JAIN REFERENCE LIBRARY ACHARYA SURENDRASURI JAIN TATVA GYANSHALA Page 1/1

की अपेक्षा अनित्य, अन्यथा नित्य होते हैं। मपु० २४.१४८, हपु० ५८.५५ वीवच०, १६.११७

अणुमान्—विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में विद्युत्कान्त नगर के स्वामी विद्याधर प्रभंजन और उनकी रानी अंजना का पुत्र। इसका मूल नाम अमिततेज था। शरीर को सूक्ष्मरूप देने में समर्थ होने से विद्याधरों ने इसे यह नाम दिया था। यह सुग्रीव का मित्र था। राम-नाम से अंकित एक मुद्रिका राम से लेकर यह सीता की खोज करने लंका गया था। वहाँ पहुँचकर इसने अपना रूप भ्रमर का बनाया था। शिंशिपा वृक्ष के नीचे सीता को देखकर इसने वानरविद्या से अपना रूप वानर का बनाया था और वृक्ष पर बैठकर वहीं वह अंगूठी सीता के पास गिरायी थी। सीता को खोज करने के पश्चात् राम को सर्वप्रथम सीता की प्राप्ति का सन्देश इसी ने दिया था। इस कार्य के फलस्वरूप राम ने इसे अपना सेनापति बनाया था। सुग्रीव और इसने गरुड़वाहिनी, सिंहवाहिनी, बन्धमोचिनी और हननावरणी विद्याएँ राम और लक्ष्मण को दी थीं। अन्त में इसने राम के साथ दीक्षा धारण की थी और श्रुतकेवली होकर मुक्ति प्राप्त की थी। मपु० ६८.२७५-२८०, २९३-२९८, ३११,३६३-३७०, ३७७, ५०८-५०९, ५२१-५२२, ७०९-७२०

अणुव्रत—गृहस्थ दशा में पाँच महाव्रतों का एकदेश पालन करना। अणुव्रत पाँच हैं—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और इच्छापरिमाणुव्रत। इन पाँचों की पाँच-पाँच भावनाएँ तथा अतिचार भी होते हैं। जो गृहस्थ भावनाओं के साथ इनका पालन निरतिचार करते हैं वे सम्यग्दर्शन की विशुद्धि पूर्वक परम्परा से मोक्ष पाते हैं। मपु० १०.१६३-१६४, ३९.४, पपु० ११.३८-३९, ८५.१८, हपु० १८.४६, ५८.११६, १३८-१४२, १६३-१७६

अणुव्रती—स्थूल रूप से पाँच पापों से विरत, शील-सम्पन्न और जिनशासन के प्रति श्रद्धा से युक्त मानव। ऐसा जीव मरकर देव होता है। हपु० १८.४६, पपु० २६.९९ दे० अणुव्रत

अणोरणीयान्—सौधर्मेन्द्र द्वारा स्तुत वृषभदेव का एक नाम। मपु० २५.१७६

अतन्द्रालु—सौधर्मेन्द्र द्वारा स्तुत वृषभदेव का एक नाम। मपु० २५.२०७

अतसी—एक प्रकार का अनाज-अलसी। मपु० ३.१८७

अतिकन्यार्क—रावण के पक्ष का एक विद्याधर। मपु० ६८.४३

अतिकाय—व्यन्तर देवों की एक जाति विशेष का पाँचवाँ इन्द्र। वीवच० १४.६० दे० व्यन्तर

अतिगृद्ध—जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र में स्थित वत्साकावती देश की प्रभाकरी नगरी का राजा। यह मरकर विषयासक्ति और बहुत आरम्भ एवं परिग्रह के कारण पंकप्रभा नरकभूमि में उत्पन्न हुआ था। मपु० ८.१९१-१९३

अतिचार—व्रतों में शिथिलता लाकर विषयों में प्रवृत्ति करना। ये सम्यग्दर्शन के आठ, तथा अणुव्रतों और शीलव्रतों के पाँच-पाँच होते हैं। हपु० ५८.१६२-१६५, १७०

अतिथि—(१) भ्रमणशील, अपरिग्रही, सम्यग्दर्शन आदि गुणों से युक्त, निःस्पृही और अपने आगमन के विषय में किसी तिथि का संकेत किये बिना संयम की वृद्धि के लिए आहार हेतु गृहस्थ के घर आगत श्रमण-मुनि। हपु० ५८.१५८, १५.६, पपु० १४.२००, ३५.११३

(२) भरतक्षेत्र के चारणयुगल नगर के राजा सुयोधन की रानी, सुलसा की जननी। मपु० ६७.२१३-२१४

अतिथिसंविभागव्रत—चार शिक्षाव्रतों में चौथा शिक्षाव्रत, अपर नाम अतिथि-पूजन। पद्मपुराणकार ने इसे तीसरा शिक्षाव्रत कहा है। अपने आने की तिथि का संकेत किये बिना घर आये अतिथि को शक्ति के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित होकर विधिपूर्वक भिक्षा (आहार), औषधि, उपकरण तथा आवास देना। पपु० १४.१९९-२०१, हपु० १८.४७, ५८.१५९, वीवच० १८.५७ इसके पाँच अतिचार हैं—१. सचित्तनिक्षेप—हरे पत्तों पर रखकर आहार देना। २. सचित्तावरण—हरे पत्तों से ढका हुआ आहार देना ३. परव्यपदेश—अन्य दाता द्वारा देय वस्तु का दान करना ४. मात्सर्य—दूसरे दाताओं के गुणों को सहन नहीं करना ५. कालातिक्रम—समय पर आहार नहीं देना। यह गृहस्थों का व्रत है। पात्रों की अपेक्षा से यह अनेक प्रकार का होता है। पपु० ११.३९-४०, हपु० ५८.१८३ दे० शिक्षाव्रत।

अतिदारुण—एक व्याध। यह छत्रपुर नगर के दारुण नामक व्याध और उसकी पत्नी मंगी का पुत्र था। इसने प्रियंगुखण्ड नाम के वन में प्रतिमायोग से तप करते हुए वज्रायुध मुनि को मार डाला था जिससे मरकर यह सातवें नरक में उत्पन्न हुआ था। मपु० ५९.२७३-२७६, हपु० २७.१०७-१०९

अतिदुःषमा—अवसर्पिणीकाल का छठा और उत्सर्पिणीकाल का प्रथम भेद। अपर नाम दुःषमा-दुःषमा। मपु० ७६.४५४, वीवच० १८.१२२ दे० दुःषमा-दुःषमा

अतिनिरुद्ध—पाँचवीं धूमप्रभा नरकभूमि के प्रथम प्रस्तार में स्थित तम नामक इन्द्रक बिल की पश्चिम दिशा में विद्यमान आर नामक इन्द्रक बिल की पश्चिम दिशा में स्थित महानरक। हपु० ४.१५५

अतिनिसृष्ट—चौथी पंकप्रभा पृथिवी के प्रथम प्रस्तार आर इन्द्रक बिल की पश्चिम दिशा का महानरक। हपु० ४.१५५

अतिपिपास—रत्नप्रभा नामक नरकभूमि के प्रथम प्रस्तार में विद्यमान सीमान्तक नामक इन्द्रक बिल की उत्तर दिशा में स्थित महानरक। हपु० ४.१५१

अतिबल—(१) वृषभदेव के पचहत्तरवें गणधर। हपु० १२.५५-७०

(२) सूर्यवंशी राजा महाबल का पुत्र और अमृत का जनक। इसने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली थी। पपु० ५.४-१०

(३) तीर्थंकर पद्मप्रभ के पूर्वभव का एक नाम। पपु० २०.१४-२४

(४) भविष्यकालीन सातवाँ नारायण। हरिवंश-पुराणकार ने इसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Mo. 9512234311 www.jainreferencelibrary.org jaintatvagyanshala@gmail.com